जीवन पाथेय

पूज्य श्री नारायणभाई द्वारा प्रबोधित
अनुभवसिद्ध अध्यात्मसार

सर्वजीवहितावह ग्रंथमाला - ६९

संस्थापक : अ.मु.प.पू. श्री नारायणभाई गी. ठक्कर
श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन
अमदाबाद - १३

श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन का प्रतीक

प्रतीक में श्री स्वामिनारायण भगवान के चरण कमल में सामुद्रिक शास्त्र में वर्णन किये गये भगवत्स्वरूप के सोलह विलक्षण चिन्ह है:

*दाहिने चरण कमल में नौ चिन्हः

स्वस्तिक मांगल्यमय भगवत्स्वरूप को सूचित करता है।

अष्टकोण उत्तर-दक्षिण-पूरब-पश्चिम-अग्नि-ईशान-नैऋत्य-वायव्य आठों दिशा में भगवत्-करूणा बह रही है, इसका प्रतीक है।

ऊर्ध्वरेखा भगवत्कृपा से जीवों का अविरत ऊध्वीकरण दर्शित करता है।

अंकुश सर्व को अंकुश में रखने, सर्व के कारण रूप ऐश्वर्य का प्रतीक है तथा अंतःशत्रु को बस में रखना सूचित करता है।

ध्वज ध्वज अथवा केतु सत्यस्वरूप भगवान की विजय पताका है ।

वज्र भगवत्स्वरूप का वज्र तुल्य शक्तिशाली बल जीवों के दोषों को नष्ट कर काल-कर्म-माया के भय से मुक्त करता है, यह निर्देश देता है।

पद्म जलकमलवत् निर्लेप करने वाले भगवत्स्वरूप की करूणामय मृदुता को सूचित करता है।

जांबुफल भगवत्स्वरूप में जो सम्मिलित है उनको प्राप्त दिव्य सुखरूप रस का प्रतीक है।

जव अग्नि में जव, तल आदि अनाज़ की आहुति देकर अहिंसामय यज्ञ करने वाले एवं भगवत्स्वरूप में सम्मिलित है उनके धन-धान्य एवं योगक्षेम का भगवान स्वयं वहन करते है, यह सूचित करता है।

***बाये चरण कमल में सात चिन्हः**

मीन विपरित प्रवाह में बहकर उद्‌भव स्थान तक पहुँचती मीन की सदृश ऐश्वर्य-सुख के उद्‌भव स्थान भगवत्स्वरूप की प्राप्ति सूचित करता है।

त्रिकोण जीव को मनोव्यथा, व्याधि, आपत्ति से मुक्त करवा कर ईश्वर, माया, ब्रह्म की त्रिपुटी से पर परब्रह्म-स्वरूप में स्थित करने का निर्देशक है।

धनुष अधर्म से निज आश्रित का रक्षण करने का प्रतीक है।

गोपद भगवत्प्रिय गोवंश और भगवत्प्रिय सत्पुरूषों के परोपकारी लक्षण को सूचित करता है।

व्योम भगवत्स्वरूप के आकाशवत् निर्लेप भाव की सर्वत्र व्यापकता सूचित करता है।

अर्धचन्द्र भगवत्स्वरूप के घ्यान के द्वारा चँद्रकला की सदृश वृद्धि होकर पूर्णता को प्राप्त करता है, यह दर्शित करता है।

कलश भगवत्स्वरूप की सर्वोपरिता एवं परिपूर्णता का प्रतीक है।

प्रतीक में स्थित भगवत्स्वरूप के चिन्ह के रहस्य को दृष्टि समक्ष रखकर, सर्व जीव का हित हो ऐसी निःस्वार्थ ज्ञान-ध्यान-सेवा प्रवृत्ति सदैव करते-करवाते रहने के मिशन के पुरूषार्थ में भगवत्कृपा बरसती रहे, ऐसी श्री हरि के चरण कमल में प्रार्थना।

।। श्री स्वामिनारायणो विजयतेतराम् ।।

जीवन पाथेय

सर्वजीवहितावह ग्रंथमाला

६९

: संस्थापक :

• अ. मु. प. पू. श्री नारायणभाई गी. ठक्कर •

श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन

अहमदाबाद-१३

श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन

सर्वजीवहितावह ग्रंथमाला

❄ **प्रकाशन समिति** ❄

: प्रेरक - मार्गदर्शक :

❄ **अ. मु. प. पू. श्री नारायणभाई गी. ठक्कर** ❄

©श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन, अहमदाबाद

(रजि. नं. ई/४५४६/अहमदाबाद : १९८१)

इन्कमटेक्स एक्षेम्पशन u/s 80(G)5

प्रथम संस्करण

प्रतियाँ : १०००

२००७, १६, फरवरी

सं. २०६३ महा वद चौदश

सेवा मूल्य : रु. १०/-

प्रकाशक

श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन

८, सर्वमंगल सोसायटी, पूज्यश्री नारायणभाई मार्ग

नारणपूरा, अहमदाबाद - ३८००१३ ✆ : २७६८२१२०

मुद्रक

भगवती ओफसेट

बारडोलपूरा, अहमदाबाद

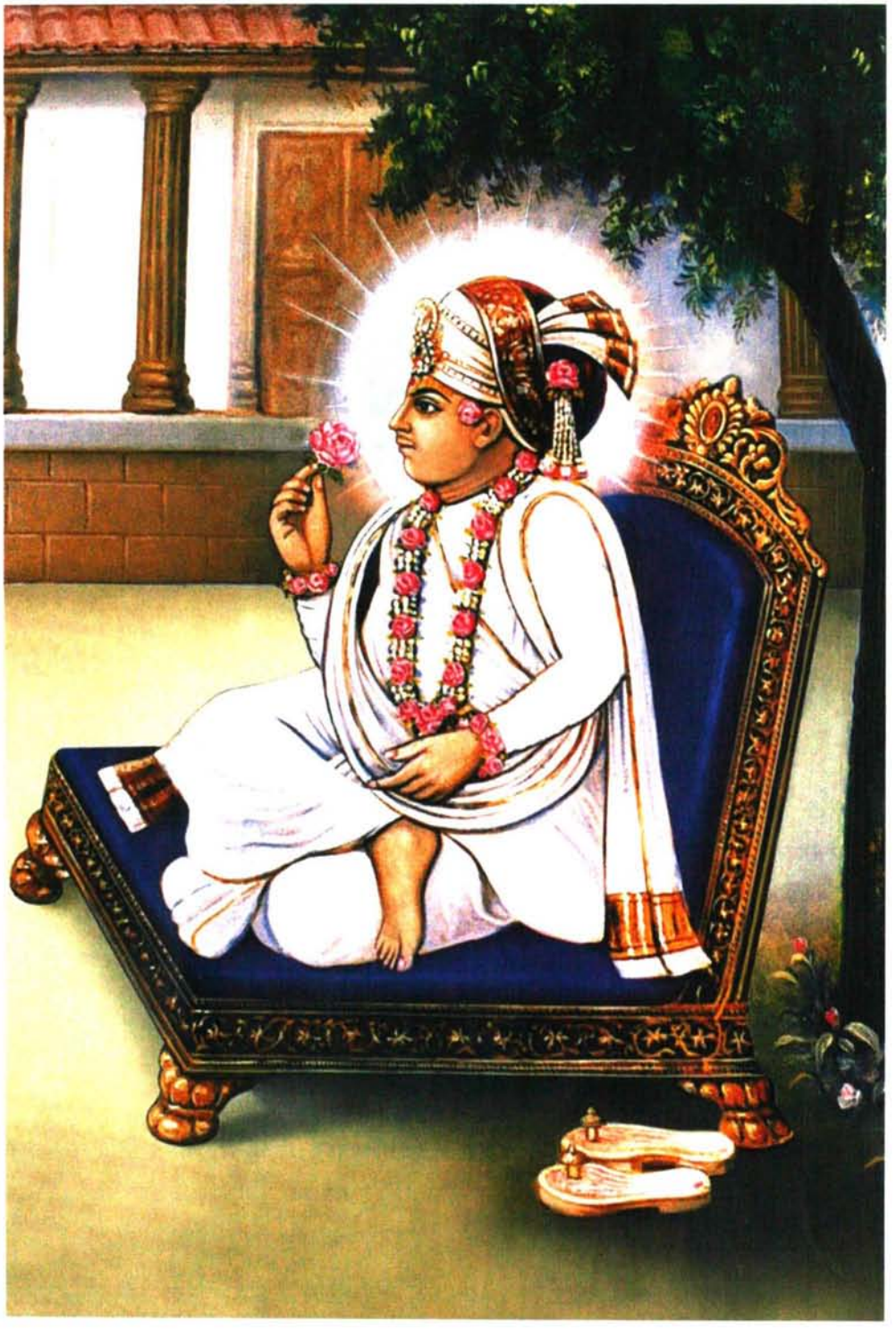

सर्वोपरि उपास्य मूर्ति

पूर्ण पुरुषोत्तम श्री स्वामिनारायण भगवान

अर्पण

अनंतकोटि मुक्त के
स्वामी एवं सदा साकार
दिव्य मूर्ति ऐसे परम कृपालु
श्री स्वामिनारायण भगवान के
गूढ़ रहस्य ज्ञान को समझाने वाले,
महाप्रभु के सुखनिधि स्वरूप की सर्वोपरिता
सर्वत्र प्रवर्तित करने वाले तथा अनादिमुक्त की
सर्वोत्तम स्थिति का अनुभव करवाने वाले
-इस प्रकार समग्र सत्संग और मानव कुल
पर महद् उपकार करने वाले परम कृपालु
अनादि महामुक्तराज़
प. पू. श्री अबजीबापाश्री के
चरणकमलों में सादर समर्पित

●

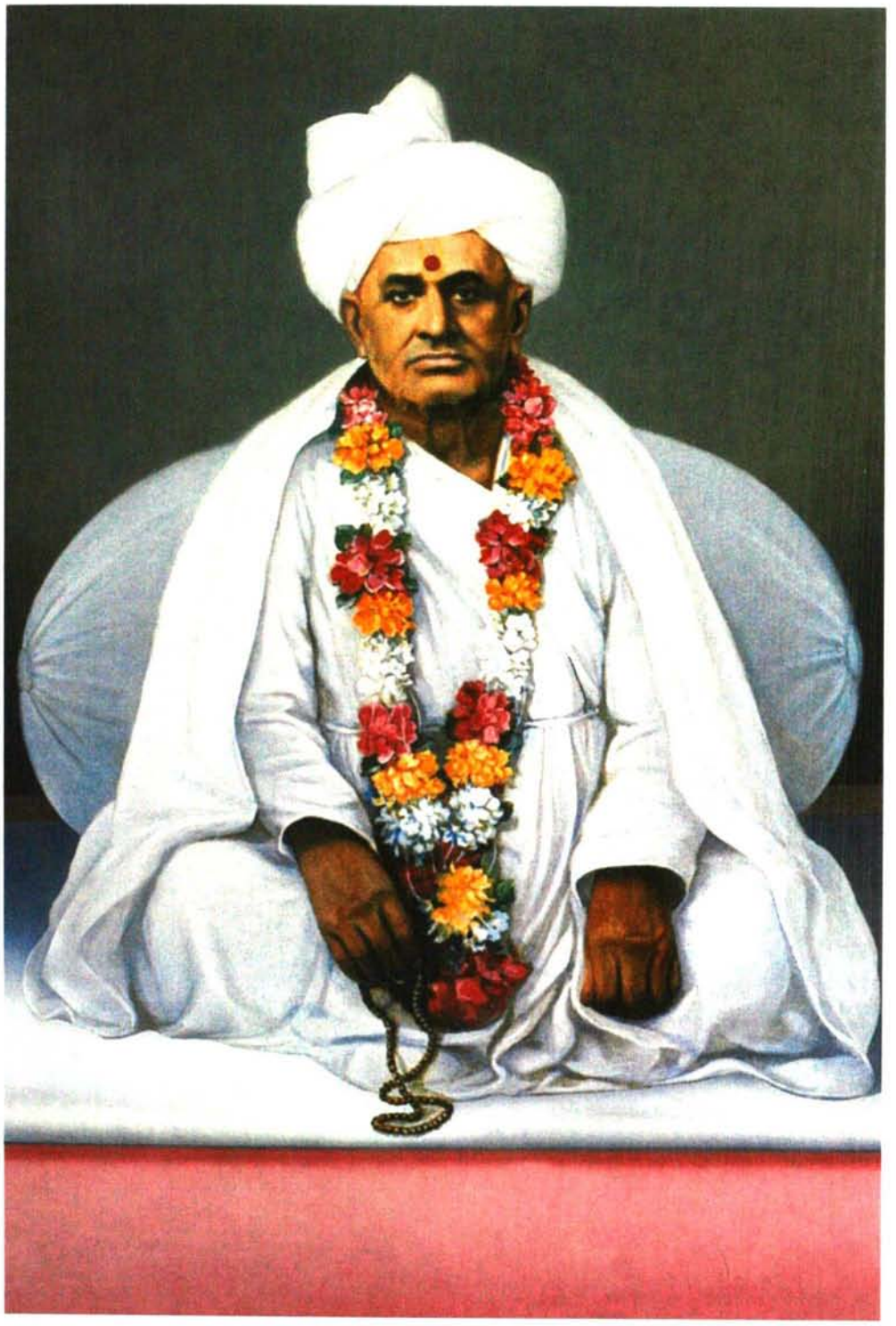

रहस्यज्ञान प्रदाता

अनादि महामुक्तराज श्री अबजीबापा

अर्घ्य

श्रीजीमहाराज़ तथा बापाश्री के
सर्वोपरि तत्त्वज्ञान को वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत
कर आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शिक्षा क्षेत्र में
अद्वितिय योगदान देने वाले, धर्मशुद्धि, संचालनशुद्धि एवं
चारित्र्यशुद्धि के प्रखर हिमायती तथा चैतन्य का उर्ध्वीकरण
करने रूपी ब्रह्मयज्ञ की आहलेक जगाने सर्वजीवहितावह
संस्था **श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन** की
स्थापना करने वाले करूणा मूर्ति सद्‌गुरूवर्य
अनादि मुक्तराज़ पूज्य श्री नारायणभाई के
चरण कमल में शतकोटि वंदन

●

संस्थापक

अनादि मुक्तराज

पूज्यश्री नारायणभाई गीगाभाई ठक्कर

संपादकीय विशेष

श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन ऐसी ग्रंथ श्रेणी प्रकाशित-संपादित करने को उत्सुक है, जो समग्र मानव जाति के लिये कल्याणकारी हो एवं जिसके पठन से भारतीय संस्कृति का उच्चत्तम उद्देश्य सार्थक होता हो।

वर्तमान बुद्धियुग में उच्च शिक्षा का विस्तार प्रतिदिन बढ़ रहा है। उच्च शिक्षा मूल उद्देश्य जीवन में उच्चतर मूल्य प्रस्थापित करना है, जीवन का सर्वोच्च मूल्य परमात्मा के परम सुख की अनुभूति में स्थित है। इन उद्देश्यों की ओर पथदर्शित करने में यह ग्रंथ श्रेणी सहायक होगी ऐसी अपेक्षा है।

शिक्षा, विज्ञान एवं यंत्रविद्या के अविरत बढ़ते हुए व्याप को हमें इस प्रकार ढ़ालना है कि केवल भौतिक सुख की प्राप्ति का साधन न बनकर, मानव के आंतरिक विकास में उच्चत्तम सहायक हो; साथ ही हमें ऐसी समझ का प्रसार करना है कि उत्क्रांति का अंतिम लक्ष्य उत्तरोत्तर विकसित होकर परमात्मा के दिव्य सुख में सम्मिलित होने में है।

दिव्यानंद की प्राप्ति के लिये अविरत विकसित होने की प्राकृतिक अंतःप्रेरणा मानव को ईश्वर द्वारा दिया गया अनमोल उपहार है। यह ऐसा सूचित करता है कि हम सब साथ मिलकर ऐसी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थिति का निर्माण करें, जिससे जीवन के उर्ध्वीकरण की प्रक्रिया निर्बाध रूप से पूर्णतः पल्लवित हो। इस कार्य को गति प्राप्त हो ऐसे प्रेरणादायी साहित्य का सर्जन करना आवश्यक है।

मानव जाति के आध्यात्मिक एवं सामाजिक श्रेय के हेतु श्री स्वामिनारायण भगवान ने, जीवन को अविरत ऊर्ध्व बनाकर,

आत्यंतिक दिव्य सुख की प्राप्ति हो ऐसा समन्वयकारी ज्ञानमार्ग प्रस्थपित किया है; उनकी श्रीमुखवाणी वचनामृत तथा शिक्षापत्री में इस तत्त्व ज्ञान की गहनता अनन्य है एवं सविस्तार सरल भाषा में प्रस्तुत है। इसके अतिरिक्त स्वयं के ब्रह्मनिष्ठ संत एवं गृहस्थ मुक्तपुरूष द्वारा सर्वहितावह साहित्य भी विपुल मात्रा में सज्जित करवाया है।

उपर्युक्त ग्रंथो में सर्वग्राह्य भारतीय संस्कृति तथा जीवन जीने की वास्तविक दिशा दर्शित की गई है। अतः इस ग्रंथ श्रेणी में सर्वजन पूरव के हो या पश्चिम के, सभी को दिव्यता की ओर अग्रसर होने में पथदर्शक हो, ऐसे आदर्श तथा ज्ञान को अर्वाचीन ज्ञान के प्रकाश में प्रस्तुत करने का उत्तम प्रयत्न किया जायेगा। हमें विश्वास है कि इससे मानव जीवन में संवादिता आयेगी एवं आधुनिक जीवन की विषमता क्रमशः कम होते हुए दूर हो जायेगी।

भारत या विश्व के अन्य साहित्य जिसमें दर्शित विचार हमारे उद्देश्य के साथ सुसंगत होंगे, उन्हे भी इस ग्रंथ श्रेणी में सम्मिलित किया जायेगा।

हमारी ईच्छा यह है कि इस ग्रंथ श्रेणी के पुस्तक केवल गुजराती भाषा में ही नहीं, अपितु हिंदी, अंग्रेजी आदि भाषा में भी प्रकाशित करें, जिससे अन्य भाषी पाठक भी इस ग्रंथ श्रेणी से लाभांवित हो।

मिशन की इस प्रवृत्ति की सफलता प्राप्ति में सभी का सहकार प्राप्त हो एवं मिशन के सर्व कार्य में सदैव प्रभु कृपा संलग्न हो, यही अभ्यर्थना।

दासानुदास
नारायणभाई गी. ठक्कर
स्थापक प्रमुख
श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन

सं. २०४२, श्रीहरि जयंती
अप्रैल १८, १९८६
अहमदाबाद

निवेदन

'श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन' संस्था के स्थापक एवं आजीवन प्रमुख अ.मु.प.पू. श्री नारायणभाई आत्मा-परमात्मा के अखंड साक्षात्कार वाले, प्रबुद्ध, अनुभवसिद्ध तथा महान आर्षदृष्टा होने से, आध्यात्मज्ञान की वास्तविक पिपासा धारित मुमुक्षु साधकों के लिये प्रखर आध्यात्मिक मार्गदर्शक थे। वे 'स्वामिनारायण धर्म' को संकुचित विचारधारा से न मानते हुए एक महान विश्वधर्म के तौर पर प्रतिपादित करते थे। उनकी दृष्टि विशद तथा सर्वधर्म समन्वयकारी थी। उनका अभिगम सदैव सर्वजीवहितावह ही था। वे कहते थे कि पूर्ण परब्रह्म परमात्मा तत्त्व एक ही है और वह अंतिम-सर्वोपरि सत्ता है। वह स्वरूप भगवान श्री स्वामिनारायण के रूप में पूर्ण स्वरूप से आविर्भाव को प्राप्त था। मनुष्यजीवन का सर्वोच्च ध्येय, सर्वोपरि परमात्मा के स्वरुप आत्यांतिक मोक्ष (Ultimate redemption) की स्थिति है। उस स्थिति की उपलब्धि परमात्मा के पूर्ण आविर्भाव (manifestation) के यथार्थ ज्ञान-ध्यान तथा शुद्ध उपासना के बिना संभव नहीं होती है। अतः इस स्वरुप की शुद्ध उपासना, उसका ध्यान एवं यथार्थ ज्ञान अनिवार्य है। मुमुक्षु को इस विषय पर गहनतापूर्वक विचार करना चाहिये।

पूज्यश्री नारायणभाई के पास विविध धर्म के अनुयायी भी आध्यात्मिक मार्गदर्शन के हेतु आते, उनके वात्सल्यपूर्ण सांनिध्य में बैठने भर से अनेक प्रश्नो के हल अंतःकरण में अपने आप हो जाते थे। संसार के त्रिविध ताप का शमन होकर अंतरात्मा में

शितलता व्याप्त हो जाती, ऐसे अनुभव कई लोगों को हुए थे। वे स्वयं के अंतरंग सेवक के समक्ष कई बार आध्यात्मिक ज्ञान के गहन रहस्यों को प्रकट कर उनको उपकृत करते थे। इस दिव्य विचार संग्रह में से पूज्यश्री नारायणभाई की उपस्थिति में ही अंतरंग सेवक द्वारा, संकलित कई प्रेरक एवं सैद्धांतिक वचनों के आधार पर यह लघु पुस्तिका विविध विषय तात्पर्य के अंतर्गत की है। जो सरल होते हुए भी, उस का अर्थगांभीर्य दर्शित करती है। स्वामिनारायण धर्म के या अन्य सत्वगुणी सज्जनों को भी उपयोगी हो, मुमुक्षु - साधक तथा भविष्य की पिढियाँ इसका महद् लाभ उठाकर, स्वयं की जीवनयात्रा सफल बनाये, यही आशा। हिन्दीभाषी भी ईस ज्ञान से लाभान्वित हो इस आशय से यह हिन्दी अनुवादित पुस्तिका प्रकाशित करते हुए आनंद और गौरव की अनुभूति करते हैं।

सं. २०६३, महा वद चौदश
ई. स. २००७, १६ फरवरी

प्रकाशन समिति
श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन

जीवन पाथेय

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ
१	जीवन का ध्येय	१
२	मुमुक्षुत्व जागृति	५
३	वैराग्य - विवेक	१०
४	ज्ञान - अज्ञान	१२
५	सम्यक दृष्टि	१४
६	कुछ सिद्धांत	१७
७	दोष	२२
८	कुसंस्कार	२५
९	आत्मनिरीक्षण	२७
१०	योग्य - अयोग्य व्यवहार	२९
११	सुख-दुःख	३१
१२	सत्य-असत्य	३५
१३	मनोनिग्रह	३९
१४	उपासना	४१

जीवन का ध्येय

☆ मनुष्य जीवन का परम एवं चरम ध्येय परमात्मा का साक्षात्कार कर, उन के साथ परमऐक्य को साधकर तादृश्य होना है। यह अनेक शास्त्रो में कथित हैः

क्योंकि जीवमात्र पूर्ण, स्थायी एवं शाश्वत सुख - शांति - आनंद का इच्छुक है तथा सर्व दुःखों से यथार्थ रुप से मुक्ति का इच्छुक है। यह स्थिति केवल परमात्मा के दिव्य स्वरुप की प्राप्ति द्वारा ही संभव है। इस के अतिरिक्त अन्य किसी लक्ष्य की सिद्धि के द्वारा संभव नहीं है।

☆ मनुष्य जीवन सत्य-असत्य का विवेक कर, असत्य को त्याग कर सत्य का ग्रहण करने के हेतु है, परंतु इसका मूल उद्देश्य सर्व प्रकार के दुःख एवं पीड़ा से मुक्ति प्राप्तकर शुद्ध, स्थायी एवं शाश्वत सुख की प्राप्ति ही है।

☆ दीर्घकाल पर्यंत हमारे चिंतन का विषय यह होना आवश्यक है कि मनुष्य जीवन की सार्थकता किसमें हैः इसका पूर्णतः निर्णय-निश्चय कर मन में संशय रहित स्थिति निष्पन्न करें तथा इस स्थितप्रज्ञ स्थिति को प्रतिपल दृढ़ करते रहे। तत्पश्चात ही हम आत्यांतिक मुक्ति रुप लक्ष्य की प्राप्ति की ओर प्रगति कर सकते हैं।

☆ जीवन के दो मार्ग हैं प्रेय मार्ग तथा श्रेय मार्ग। प्रेय मार्ग संसार के भौतिक भोगों की प्राप्ति का मार्ग है। जब की श्रेयमार्ग परमात्मा के अविचल दिव्य सुख की प्राप्ति का मार्ग है। प्रेयमार्ग में अनंत प्रकार के दुःख तथा मनुष्यजीवन की

असार्थकता विद्यमान है, जब की श्रेयमार्ग में शाश्वत सुख-शांति, परमानंद की उपलब्धि तथा जीवन की सार्थकता समाविष्ट है। साधक को श्रेयमार्ग द्वारा आत्यंतिक मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य बनाकर, उस में एकाग्र एवं स्थिर होने का प्रयत्न करना चाहिए।

☆ ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य यहाँ - वहाँ से एकत्रित किया हुआ अपरिपक्व ज्ञान तथा उससे संबंधित अल्प चिंतन-मनन करने से सिद्ध नहीं होता है।
उसके हेतु कई वर्ष पर्यंत संपूर्ण जागृति (Total awareness) सह आत्मनिरीक्षण द्वारा स्वयं की कसौटी कर, अस्खलित पुरुषार्थ करना आवश्यक है।

☆ कई लोग मात्र भावुकतावश मुक्त दशा की प्राप्ति को ध्येय बना लेते हैं। परंतु उस लक्ष्य को अनुभूति की कसौटी पर प्रमाणित किये बिना क्या बाधक है तथा क्या साधक है इसका निर्णय किये बिना ही स्वयं की मर्यादा एवं सामर्थ्य को जाने बिना ही निर्णय करते हैं। ऐसा निर्णय दीर्घकाल पर्यंत नहीं टिक सकता। "त्याग न टके रे वैराग्य विना" (त्याग वैराग्य के बिना टिक नहीं सकता है) सद्गुरु निष्कुलानंद स्वामी की उक्तिनुसार किसी भी क्षण सांसारिक प्रलोभन में आकृष्ट हो जाता है।

☆ प्रभु प्राप्ति का ध्येय निश्चत कर, उससे संबंधित पर्याप्त विचार कर कुछ निर्णय भी किये, तथापि व्यक्ति को स्वनिरीक्षण करने से स्वयं में कई छिद्र दृष्टिगोचर होंगे। सूक्ष्म तौर पर निरीक्षण करते रहने से अधिकाधिक छिद्र-दोष ज्ञात होंगे। उनदोषों के प्रति जागरुक होने से, उन पर विजय प्राप्ति की

तीव्र ईच्छा होगी। इसी प्रकार आंतरिक संघर्ष करते रहने से प्रभुप्राप्ति का ध्येय ही प्रिय लगेगा, उस में ही शाश्वत सुख-शांति विध्यमान है ऐसा प्रतीत होगा। उस ध्येय के अतिरिक्त सभी कुछ कष्टदायी, दुःखदायी तथा तुच्छ प्रतीत होगा, तब ही विवेक की दृढता मानी जायेगी।

☆ जो व्यक्ति सत्पुरुषों का लक्ष्य तथा आज के भौतिकवादी लौकिक व्यक्ति के परभाव की दृष्टि से तुच्छ लक्ष्य के भेद को नहीं जानता, वह दीर्घकाल पर्यंत संसृति (जन्म-मृत्यु के फेरे) में भटकता है।

☆ प्रभु प्राप्ति को मुख्य ध्येय बनाने से, पंचवर्तमान के यथार्थ पालन में एवं यम-नियममें अतिदृढ श्रद्धा तथा प्रभु के स्वरूप में परा, प्रेम, अनन्य भक्ति का उदय होता है।

☆ प्रभु को ही मुख्य ध्येय बनाकर, उसकी प्राप्ति के मार्ग पर, वो ही चल सकता है जो नित्य त्रिकालबाधित (तीनोंकाल में न बदलें) सत्य का ही अनुसरण करने को तत्पर रहता है।

☆ प्रभु प्राप्ति को मुख्य ध्येय बनाने वाले साधक की प्रभु हर प्रकार से सहाय करते हैं, रक्षा करते हैं तथा उसके योगक्षेम का वहन भी करते हैं।

☆ प्रभु प्राप्ति ही जीवन का ध्येय है, यह निश्चत होने के पश्चात साधक के समक्ष अनेक मत-मतांतर, धर्म-संप्रदाय, गुरु, उपदेशक, शास्त्र, आदि होते हैं। धर्मगुरु में भी अधिकतर बिना अध्यात्म की अनुभूति, मतिमंद, स्वार्थपरायण, दंभी तथा स्थापित हित वाले होते हैं। साधक के लिये कौन सा मत, कौन सा धर्म, कौन सी उपासना ग्रहण करे, किसे गुरु करें आदि चुनौतियाँ होती है। ऐसे समय पर निज अंतःकरण में सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, परमात्मा को श्रद्धापूर्वक,

हृदय से प्रार्थना करते रहने से उपर्युक्त विषय में यथार्थ मार्गदर्शन मिलता है। प्रभु उसे सच्चे गुरु उपलब्ध करवाते हैं। गुरु की शोध में भी अंधश्रद्धा न रखकर खुद की विवेक शक्ति का उपयोग कर, जाँच करते रहे कि गुरु में प्रभु के कल्याणकारी गुण हैं? उन को साक्षात्कार की अनुभूति है? या मात्र दंभ ही है? ऐसी जाँच से सच्चे गुरु की परख होती है। सच्चे गुरु की उपलब्धि के पश्चात ही परमात्मा का ज्ञान, उपासना, धर्म, आदि स्पष्ट होते हैं। तत्पश्चात ही साधना पथ निर्बाध होता है।

मुमुक्षुत्व जागृति

- ✯ सहनशील, सुख-दुःखादि द्वंदो में स्थितप्रज्ञ, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि महाव्रतों का निष्ठापूर्वक पालन करनेवाला जिज्ञासु, मुमुक्षु व्यक्ति ही प्रभुप्राप्ति के मार्ग पर प्रगति कर सकता है। अन्य के लिये यह मार्ग अति दुष्कर है।
- ✯ आध्यात्मिक प्रगति हेतु साधक को स्वयं अनेक प्रकार की मान्यता, ग्रंथियाँ एवं निश्चय को सत्पुरुष के समागम द्वारा तथा अंतदृष्टि द्वारा क्रमानुसार परिचित होना पड़ता है। विविध मान्यताओं को अनुभव की कसौटी पर परखना पड़ता है। तत्पश्चात ही मिथ्या तथा भ्रमित मान्यता ग्रंथियाँ शिथिल होती है, मंदमति दूर होती है तथा यथार्थ ज्ञान में मति स्थिर होती है।
- ✯ स्थूल बुद्धि से सूक्ष्म बुद्धि, कनिष्ट, प्रकार के आचरण से सत्पुरुष द्वारा समझाये गये पंचवर्तमान के* विशद अर्थ सहित उत्कृष्ट आचरण तथा परमात्मा के दिव्य स्वरुप संबंधित ज्ञान, कर्म और उपासना में निरंतर मति होने से क्रमशः ध्येय प्राप्ति की और अग्रसर होता है।
- ✯ भगवान स्वामिनारायण के 'वचनामृत' के कथनानुसार सदैव भौतिक शरीर की अंतावस्था-मृत्यु अवलोकित करने वाला व्यक्ति सांसारिक बंधनो से मुक्ति की ओर, प्रभु प्राप्ति जैसे परिणाम स्वरुप लक्ष्य की और त्वरित गति से प्रगति करता है।

---

* पंचवर्तमान के विशद् अर्थ इसी संस्था द्वारा प्रकाशित पंचवर्तमान पुस्तक में से जानें।

☆ चित्त में कामादि विकार उद्‌भवित न होने देने का एक उत्तम उपाय यह भी है कि स्वयं को हमेंशा प्रभु प्रसन्नतारुप मानव कल्याणकारी सेवा कार्य में व्यस्त रखते हुए प्रभु प्राप्ति के महान ध्येय की परिपूर्ति हेतु सदैव प्रयत्नशील रहें।

☆ व्यक्ति का अंतःकरण दिन के दौरान कई बार शुद्ध तथा अशुद्ध होते रहता है। एक ही व्यक्ति सुबह को देवतुल्य होता है तो शाम को शैतान भी हो सकता है। विपरित ज्ञान और क्रियाओं से मोहित होकर अशुद्ध होता है। सच्चे ज्ञान, कर्म तथा उपासना से वह शुद्ध होता है। अतः साधक को यह बात ध्यान में रखते हुए सदैव जागरुकता रखते हुए स्वयं का मूल्यांकन कर, सुधारते रहना चाहिए। इस प्रक्रिया को अविरत गतिमान रखने से निज ध्येय तक निश्चितरुप से पहुंच सकता है।

☆ जीवन की सार्थकता के लिए साधक को अतिसावधान रहना आवश्यक है। जैसे मेरे लिये क्या देखना योग्य है, क्या देखना अयोग्य है, क्या सुनना योग्य है, क्या सुनना अयोग्य है, क्या खाना योग्य है, क्या खाना अयोग्य है, क्या बोलना योग्य है, क्या बोलना अयोग्य है, क्या जानना योग्य है, क्या जानना अयोग्य है, इस प्रकार विवेकपूर्वक जागरुकता रखकर इन्द्रियों के आहार शुद्ध रखने से अंतःकरण विशुद्ध बनता है। ऐसा अंतःकरण ही प्रभु के स्वरुप में एकाग्रता के योग्य बन सकता है।

☆ इस जगत में अनेक प्रकार की चित्र-विचित्र घटनाएँ हंमेशा घटित होती रहती है, उसका भला-बुरा असर व्यक्ति पर होता है, परंतु साधक को सदैव जागरुक रहकर उसे निरीक्षित

करते रहने की जरुरत है कि घटनाओं की क्या असर स्वयं पर होती है, मेरे प्रभुप्राप्ति संबंधित लक्ष्य में कहीं कोई शिथिलता तो नहीं आती? संयोगवश किसी घटना का अंतःकरण पर दुष्प्रभाव हो जाए तो तुरंत ही उसे दूर करने का प्रयत्न कर, दूर न होने तक निष्ठापूर्वक प्रयत्न करते रहना साधक का कर्तव्य है।

☆ साधक को परमात्मा का साक्षात्कार होकर, सिद्ध मुक्त दशा उपलब्ध न होने तक, मुक्तपुरुष, सद्‌गुरु का निर्देशन तथा उनकी आज्ञा का यथार्थ पालन अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा निज ध्येय से विचलित होकर पतन की ओर अग्रसर होने की पूर्ण संभावना रहती है।

☆ प्रारंभिक स्थिति में साधक सोचता है कि इस संसार के सुख, भोग का मैं त्याग करुंगा तो मेरे पास क्या बचेगा? एक ओर संसार के सुखों का त्याग किया, परंतु अभी परमात्मा के सुख की प्राप्ति की शरुआत भी नहीं हुई है, मेरे पास तो कुछ नहीं बचेगा, मैं रिक्त हो जाउंगा। ऐसे निर्माल्य विचार की उत्पति के समय ही सोचे कि भौतिक सुखों का प्रलोभन या उसकी आसक्ति छूटने पर वासना के क्षयरूप आनन्द की प्राप्ति होती है तथा चित्त में सात्त्विक प्रसन्नता निष्पन्न होती है, जो संसार के किसी भी बड़े-से-बड़े सुख से अधिक है।

☆ नया साधक आरंभ में सत्संग सेवारुपी कार्य, चाहे कम ही करे, किन्तु अवश्य करे, क्योंकि प्रभुप्राप्ति के मार्ग में निष्कामभाव तथा निःस्वार्थभाव से किया हुआ कल्याणकारी कार्य अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है। ऐसे कार्य से पूर्व कर्म के संस्कार क्षीण होते हैं तथा सात्त्विकभाव

उदित होते हैं। जो प्रभु के स्वरूप में संलग्न होने की भूमिका तैयार करते हैं।

☆ प्रभु की प्रसन्नतारूपी कल्याणकारी सेवा कार्य किये बिना कोई सच्चा साधक बन नहीं सकता है। जिस प्रकार प्रभु अकारण ही कृपाकर हमें सत्यज्ञान, उपासना, भक्ति आदि प्रदान कर उपकृत करते हैं, उसी प्रकार हमारा कर्तव्य है कि अन्य के कल्याण तथा अभ्युदय के लिये निष्काम परोपकारी प्रवृत्ति करने का पवित्र कर्यव्य है। उसके द्वारा जगत में प्रभु के स्वरुप के सत्यज्ञान तथा उपासना की रक्षा होती है। अतः साधक पर प्रभु की प्रसन्नता एवं कृपा होती है।

☆ स्वयं के कर्तव्य को भूलना, कार्य में शिथिल होना, प्रमाद के कारण कार्य की उपेक्षा करना, अल्प त्रूटियों को गंभीरता से लक्ष्य में न लेना आदि। इस प्रकार के मनोवर्तन साधक की गैरजिम्मेदारी, शुष्कता तथा प्रमाद को सूचित करता है जो साधना में बाधित होता है।

☆ जो साधक निज कर्यव्य का अतिशय गंभीरतापूर्वक नीतियुक्त हो कर पालन करता है, श्रद्धा से, कर्तव्य प्रभु द्वारा सुपुर्द किया गया कार्य है, यह मानकर निष्ठापूर्वक पालन करता है, लौकिक दृष्टि से तो सफलता प्राप्त करता ही है, अपितु आध्यात्मिक मार्ग पर भी सफलता एवं उन्नति को प्राप्त करता है।

☆ जिस प्रकार व्यक्ति स्वयं की उन्नति तथा सफलता की इच्छा सर्वप्रकार से रखता है, अवनति और निष्फलता की कामना कभी नहीं करता। ऐसी ही कामना अन्य के लिये भी करें तथा उसमें सहायक हो तो क्रमशः राग-द्वेष रहित होकर उन्नत

होता है।

- ☆ साधक का लौकिक व्यवहार भी अच्छा एवं नीतिपूर्ण होना आवश्यक है। फलस्वरुप, साधना में लौकिक - व्यावहारिक विक्षेप कम बाधित होते हैं तथा कुछ अनिवार्य व्यावहारिक सहायता भी मिलती है, जो साधन दशा में अपेक्षित है।
- ☆ साधना करते हुए जो अनुभव तथा उपलब्धियाँ हुई हो उनकी स्मृतियाँ रखना आवश्यक है। वे साधना की शिथिलता एवं निराशा के समय में नये प्राण डालकर, नई आशा एवं ऊर्जा को संचारित करने में उपयोगी होती है।
- ☆ जो साधक देह संबंधित भौतिक पदार्थ तथा लौकिक संबंधो के प्रति आसक्ति को पूर्व तैयारी कर, मन में से एकबार भी दूर नहीं कर सकता। उसकी आगे की प्रगति अवरोधित हो जाती है। बार-बार सांख्यज्ञान के द्वारा प्रयत्नपूर्वक आसक्ति को दूर करना चाहिए। इस प्रकार अविरत करते रहने से दृढ़ता आती है तथा अंततः उस में जीत होती है।
- ☆ किसी भी दुर्गुण को त्यागने तथा सद्‌गुण को ग्रहण करने के प्रयत्न में असंख्य बार निष्फलता मिलने पर भी निराश या हताश हुए बिना अविरत प्रयत्न करनेवाले को सफलता निश्चितरूप से मिलती है।
- ☆ परमात्मा स्वरूप की प्राप्ति के सिवा अन्य सभी लौकिक या अलौकिक, भौतिक या अधिभौतिक प्राप्ति की इच्छा ही न रहे तो सच्चा मुमुक्षत्व जागृत होता है।

वैराग्य - विवेक

- ✯ जब तक समझदारीपूर्वक का यथार्थ वैराग्य उत्पन्न नहीं होता, तब तक प्रभु के स्वरुप में चित्त की वृत्ति का निरोध भी संभव नहीं है।
- ✯ अनेक प्रकार की सांसारिक - व्यावहारिक व्यथा तथा प्रतिकूलता में बार-बार निराशा या उदासीनता होती रहे तो ऐसा भाव नकारात्मक होने से वैराग्य सिद्ध करने में बाधक होता है।
- ✯ वैराग्य की सिद्धि के हेतु आत्मा - अनात्मा के ज्ञानरुपी सांख्यज्ञान तथा प्रभु के स्वरुप की ही तीव्र त्वरा अत्यंत आवश्यक है।
- ✯ परमात्मा के स्वरुप के अतिरिक्त कहीं भी अणुमात्र भी आसक्ति न रहे, यह वैराग्य की चरमसीमा है।
- ✯ समग्र संसार का त्याग किया हो, परंतु अंतरात्मा में तीव्र वैराग्य की दृढ़ता न हो तो सद्गुरु निष्कुलानंद स्वामी के कथनानुसार "त्याग न टके रे वैराग्य विना" (वैराग्य के बिना त्याग नहीं टिकता) ऐसा त्यागी जहाँ भी होगा संसार की रचना खड़ी करेगा, उसमें उलझ जाएगा।
- ✯ बार-बार व्यंगात्मक वाणी का प्रयोग एवं मझाक - मसखरी साधक को वैराग्य की सिद्धि में हानिकर्ता है।
- ✯ परमात्मा संबंधित रहस्यज्ञान में निरंतर गंभीर चिंतन, मनन तथा निदिध्यास वैराग्य उत्पन्न होने के कारण हैं।
- ✯ सत्-असत् का विवेक एवं प्रभु के अतिरिक्त अन्य कहीं से भी आसक्ति दूर करने का अमोघ उपाय पूर्ण मुक्त स्थितिवाले

सत्पुरुष के संगम-समागम एवं सेवा ही है।

- ☆ सत्पुरुष के संगम-समागम एवं सेवा द्वारा ही आत्मनिरीक्षण, अंतर्दृष्टि तथा परमात्मा के स्वरूप संबंधित गहन चिंतन-मनन और निदिध्यास करने की योग्यता आती है।
- ☆ सत्पुरुष की सेवा-समागम द्वारा उनकी कृपा प्राप्त होती है। उस कृपा द्वारा ही अध्यात्म ज्ञान के गहन रहस्यों के मर्म को जानने की सूक्ष्म बुद्धि का उदय होता है।
- ☆ चित्तवृत्ति रुप ऊर्जा रागद्वेष तथा अहंकार के सहयोग से भौतिक पंचविषय की आसक्ति में आकृष्ट रहती है अथवा परलोक संबंधित ऐश्चर्य तथा सुखों की आसक्ति में ऊलझी रहती है। उसमें से निकलकर जब परमात्मा के स्वरुप में आकृष्ट होती है, वही सच्चा वैराग्य है।
- ☆ चित्त की ऊर्जा को दमन द्वारा नहीं, अपितु जागृतिपूर्वक, भीतर की समझ तथा संयम के द्वारा भौतिक विषयों में से परावर्तित कर परमात्मा में संलग्न करे, वह वैरांग्य है। नासमझी से अज्ञानपूर्वक कठोर तपस्या द्वारा इन्द्रियाँ या अंतःकरण का दमन करना वैराग्य नहीं है। ऐसे अज्ञानपूर्वक के दमन से तो शारीरिक तथा मानसिक शक्तियाँ क्षीण होती है तथा चित्तवृत्ति दुगने वेग से विषय में संलग्न होती है।
- ☆ परमात्मा के सम्यक् ज्ञान द्वारा बुद्धि निर्मल होती है। ऐसी बुद्धि में आत्मा - परमात्मा का प्रकाश प्रज्वलित होता है, तब बुद्धि प्रकाशित होती हैं। उसे विवेक शक्ति (Analytical power) कहते हैं। ऐसा विवेक, साधक के लिये जो कुछ बाधक है, उसे दूर करने में सहायक होता है।

ज्ञान - अज्ञान

☆ शुभ-अशुभ, अच्छे-बूरे कार्य, हमारे ज्ञान-अज्ञान के फलस्वरुप है। कर्मो के प्रवृत्त होने में ज्ञान-अज्ञान कारणरूप है। ज्ञान में त्रूटि या दोष आए तो कर्म में भी त्रूटि आती है, मात्र यही नहीं, अपितु ज्ञान में त्रुटि-क्षति आए तो नये ज्ञान की प्राप्ति में भी त्रुटि आ जाती है।

☆ सच्चा वैराग्य तथा प्रभु के स्वरूप की शुद्ध उपासना प्राप्त न होने का मुख्य कारण ज्ञान में त्रुटि होना है। फलस्वरूप बुद्धि का विकास नहीं हो सकता है, अतः आत्मा की प्रगति अवरोधित होती है।

☆ सही दिशा में विचारने में दोष होने के कारण व्यक्ति जीवन को सुखी बनाना चाहे, तथापि जीवन को सुखी बना नहीं सकता।

☆ स्वयं के अनुमान से अथवा प्रत्यक्ष प्राप्त हुए ज्ञान की तुलना, सत्पुरुष द्वारा प्रदान किये गए ज्ञान की तुलना से कर, क्षति को सुधारते रहने से ज्ञान का विकास होता है एवं उसमें दृढ़ता आती है।

☆ जब स्वयं का अनुभव एवं ज्ञान अपूर्ण होने के कारण उपयोगी न हो तथा स्थिति डांवाडोल हो रही हो, उस समय साधक को सत्पुरुष के अमूल्य शब्दप्रमाण ही सहायक एवं उपकारक होते हैं। उसके द्वारा ही स्वयं को विपरित परिस्थिति में भी बचाकर रख सकता है।

☆ आत्मा-परमात्मा संबंधित सत्यज्ञान का निश्चय होने की

अनुभूति हो, तथापि जागरुक रहकर अविरत रुप से उसकी रक्षा करते रहनी चाहिए। अन्यथा प्रतिकूल समय में उसमें संशय, शक या मिथ्याज्ञान उद्‌भवित हो सकता है।

☆ अज्ञान-अविद्या तथा उसका उद्‌भवित स्थान चित्त में, संग्रहित संस्कारो को पूर्णरुप से निर्मूल करने से ही व्यक्ति परमात्मा के पूर्ण सुख तथा शाश्वत शांति का अनुभव कर सकता है। ऐसी स्थिति, प्रभु के स्वरुप में निर्विकल्प समाधि होकर साक्षात्कार होने से ही संभव है।

☆ साधक स्वयं की आत्मा को परमात्मा के स्वरुप के साथ एकत्व के, साधर्म्य के दिव्यभाव का अखण्ड सातत्य के जतन का प्रयत्न न करे और प्रमाद रखे तो यह स्पष्ट है कि उसमें अज्ञान अभी शेष है। ऐसी अज्ञानता का, आत्यांतिक मोक्ष की प्राप्ति में विलंबरुपी दंड भुगतना पडता है। अतः साधक को इस संदर्भ में सावधानी रखने की अत्यंत आवश्यक्ता है।

☆ वाच्यार्थ ज्ञान अनुभव ज्ञानरुपी लक्ष्यार्थ में परिवर्तित न हो, तब तक वह अज्ञान ही है। क्योंकि ऐसा ज्ञान साक्षात्कार अनुभव के अभाव में केवल अल्प जानकारी ही है।

☆ 'ऋते ज्ञानान मुक्तिः' ज्ञान के बिना मुक्ती नहीं। इस उक्ति में ज्ञान का अर्थ अनुभवज्ञान ही है, वाच्यार्थज्ञान नहीं है।

सम्यक दृष्टि

★ भविष्य में चाहे जितनी भी सफलता मिले, किन्तु उस आशा से वर्तमान में निज लक्ष्य तथा कर्तव्य के प्रति गैरजिम्मेदारी रखना आलस एवं प्रमाद है, जो लक्ष्य सिद्धि में विघ्नरूप होता है।

★ हमारा कर्तव्य जगत के लौकिक व्यक्तिओं के साथ संबंध बनाये रखना नहीं, अपितु सत्पुरुष के साथ संबंध बनाये रखना है। लौकिक व्यक्ति से संबंध लक्ष्य से विचलित करता है, जब कि सत्पुरुष के साथ संबंध आत्यांतिक मोक्षरुपी लक्ष्य को सिद्ध करवाता है।

★ हमारे कार्यों के लिये जगत-समाज क्या सोचेगा? यह न देखें, अपितु प्रभु क्या सोचेंगे? यह देखना अधिक महत्त्वपूर्ण है। जगत की दृष्टि को सत्य मानने से क्या लाभ होगा? अगर प्रभु की दृष्टि में कार्य अयोग्य हो।

★ परमात्मा की दृष्टि में जो अयोग्य है, वह अयोग्य ही है एवं परमात्मा की दृष्टि में जो योग्य वह योग्य ही है। योग्य अयोग्य की कसौटी परमात्माकी दृष्टि से है, न कि जगत की दृष्टि से।

★ कोई भी कार्य करने से पहले यह जाँचे कि यह कर्म प्रभु की पसंद का है? उसमें उनकी प्रसन्नता है? अगर इसका उत्तर हाँ है तो कार्य करें और ना हो तो न करें।

★ जिस प्रकार सामान्य लौकिक व्यक्ति को संसार के दुःखो के प्रति घृणा तथा अनिच्छा उपजित होती है। उसी प्रकार साधक

को इन्द्रियों के पंचविषय संबंधित भोगों के प्रति घृणा एवं अनिच्छा उपजित होती है। जो साधक प्रथम से ही उसे दुःखदायी जानकर उसे पाने की इच्छा नहीं करता, वह सफल होता है।

☆ सामान्य साधक यह सोचता है कि मैं प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर चलना तो चाहता हूँ, परंतु मुझ में इतना सामर्थ्य नहीं है। ऐसे नकारात्मक विचार कायरता लाते हैं। सच्ची आवश्यकता वाला साधक अल्प सामर्थ्य तथा मर्यादा के रहते हुए भी हिंमतपूर्वक उस राह पर चलेगा, सामर्थ्य बढाने की निष्ठापूर्वक कोशिश करेगा। ऐसे साधक को परमात्मा की ओर से अवश्य ही सहायता मिलती है।

☆ सच्चा साधक आत्मपरीक्षण के साथ-साथ अन्य का परीक्षण करते रहता है तथा उनकी तुलना स्वयं के साथ करता है। उनमें सद्‌गुण प्रतीत होते हैं, उनको ग्रहण करता है तथा दोष प्रतीत होते हैं, उनका त्याग करता है, परंतु उनके प्रति द्वेषभाव नहीं रखता है।

☆ किसी व्यक्ति के कुछ गुणों को देखकर उसके दोषों को भी गुण मानने की गलती नहीं करनी चाहिए। उसी प्रकार किसी व्यक्ति के कुछ दोषों को देखकर उसके गुणों को भी दोषरुप मानने की गलती भी नहीं करनी चाहिए। जो व्यक्ति गुण-दोष का यथार्थ पृथक्करण नहीं कर सकता वह सफल नहीं हो सकता।

☆ किसी के पास से किसी भी अपेक्षा से पूर्व उसकी योग्यता, सामर्थ्य तथा मर्यादा को ध्यान में लेना आवश्यक है। अन्यथा समय एवं शक्ति का व्यय होता है।

☆ आध्यात्मिक साधना को कष्टरुप समझने के स्थान पर कर्तव्य समझने से ही उसमें सफलता प्राप्त होती है।

☆ परमात्मा से डरकर साधना पथपर चलने के स्थान पर निर्भय होकर समझदारी तथा विवेकपूर्वक जागरुक रहकर चलना अधिक इच्छनीय है।

☆ कई लोग संयोग तथा घटनाओं को अभूतपूर्व मानकर उनसे अत्यंत प्रभावित हो जाते हैं, परंतु उनसे प्रभावित या विचलित न होने वाला तथा स्थितप्रज्ञ रहने वाला ही सफलता प्राप्त करता है।

☆ प्रत्यक्ष अनुभव या प्रमाण के बिना किसी भी व्यक्ति के लिये मिथ्या अनुमान करना, मानसिक पाप है। जब तक उसका अनुभव न हो, तब तक कोई अभिप्राय देना योग्य नहीं है। प्रमाण या अनुभव के बिना किसी भी व्यक्ति के लिये मिथ्या धारणा करने से उस व्यक्ति के प्रति द्वेष, कुभाव, अवगुण, हीनता, उपहास, अवज्ञा आदि की भावना उद्‌भवित हो सकती है। उससे साधक को आध्यात्मिक प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है।

☆ मिथ्या आक्षेप हुए हो, तब साधक स्वयं का अपमान समझकर प्रतिकार न करे। क्योंकि साधक को मान-अपमान रहित होना है, परंतु प्रतिकार इसलिए करना है कि ऐसा न करने पर असत्य को पुष्टि मिल जाती है।

कुछ सिद्धांत

☆ शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म और शुद्ध उपासना द्वारा ही साधक परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है, अन्यथा नहीं।

☆ जगत संबंधित सांसारिक भोग तो असंख्य लोगों को प्राप्त होते हैं, परंतु परब्रह्म का साक्षात्कार अनुभव ज्ञान तथा उससे संबंधित शाश्वत दिव्य सुख-शांति तो किसी विरल व्यक्ति को ही उपलब्ध होती है।

☆ नए साधक को प्रारंभ में ऐसे भाव होते हैं कि, प्रभुप्राप्ति में सुख-शांति-आनंद है ही, परंतु लौकिक पदार्थ तथा भोगों में भी सुख तथा आनंद है। अतः दोनों को साथ रखकर चले, जिससे उभय में सफलता प्राप्त हो, परंतु ऐसा हो नहीं सकता है। साधना की परिपक्वता होने पर यह भ्रांति टूटती है।

☆ श्रेयमार्ग पर सच्चा प्रयत्न करनेवाला ही प्रेयमार्ग (भौतिक भोगों के मार्ग) से बच सकता है। श्रेयमार्ग की रूचि में तथा प्रयत्न में शिथिलता आने से व्यक्ति श्रेयमार्ग की ओर से प्रेयमार्ग की ओर चलित हो जाता है।

☆ जिस साधक में परमात्मा के कल्याणकारी गुणों को आत्मसात करने के पुरुषार्थ का अभाव, इन्द्रियों के आहार की शुद्धि, मनोनिग्रह और अनुशासन का अभाव है। वह भौतिकवाद की आँधी के सामने टिक नहीं सकता है, पंचविषय का योग होते ही साधना छोडकर भोग में उलझ जाता है।

☆ जो लोग यह कहते हैं कि हम मोक्ष की इच्छा नहीं करते हैं। उनका यह कथन सत्य विच्छिन्न है। क्योंकि वे भी सांसारिक

दुःखो से मुक्ति के इच्छुक हैं ही।

☆ प्रभुप्राप्ति के ध्येयवाला व्यक्ति जैसा निष्काम कर्म कर सकेगा वैसा निष्काम कर्म, ऐसे उत्कृष्ट ध्येय रहित वैज्ञानिक भी कभी नहीं कर सकता है।

☆ हज़ारों भौतिक वैज्ञानिक मिलकर समाज का जितना उत्कर्ष कर सकते हैं, परमात्मा के साक्षात्कार वाला एक संत उससे कहीं गुना अधिक समाज का अभ्युदय कर सकता है।

☆ व्यक्ति सदैव हानिकारक, कष्टदायी, दुःखदायी लगते पदार्थ तथा संबंधो को दूर करने का प्रयास करता दृष्टिगोचर होता है। अगर ऐसा प्रयास दृष्टिगोचर न हो तो यह स्पष्ट है कि उस व्यक्ति को हानिकारक तथा कष्टदायी पदार्थ अथवा संबंधो की समझ नहीं है। वह व्यक्ति मोहवश है।

☆ अज्ञानवश होते अधर्म से जल्दबाजी तथा असावधानी के कारण होता अधर्म पतन की ओर अधिक ले जाता है, उससे भी अधिक समझदारी से, जानबुझ कर किया गया अधर्म निश्चित रुप से अधःपतन की स्थिति के लिये जोखिमकारक तथा जिम्मेदार है।

☆ अविरत सत्कर्म करते रहने से दोष दबे रहते हैं। सत्कर्म करना छोड़ देने से दबे हुए दोष सिर उठाकर हमें दबाने की कोशिश करेंगे। जिस प्रकार परिश्रम करते रहने से आलस्य नहीं रहती, परंतु परिश्रम करना छोड़ देने से तुरंत ही आलस्य उत्पन्न होती है, यह एक नियम है।

☆ जो साधक मृत्यु के भय से रहित है, वही महाव्रतों के नियमों का तथा आज्ञाओं का पालन कर प्रभुप्राप्ति के मार्ग में प्रगति कर सकता है। उसके पश्चात प्रभु के स्वरुप की शुद्ध

उपासना, शुद्ध ज्ञान, शुद्ध वैराग्य तथा शुद्ध कर्म अपेक्षित है।

☆ प्रभु सामान्य रुप से सभी की सहायता करते रहते हैं। चाहे कोई उनके नियमों का पालन करे या न करे, परंतु जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक तथा निष्ठापूर्वक प्रभु की आज्ञाओं का एवं नियमों का पालन करता है, उसपर निज कृपा, प्रसन्नता बरसा कर उसकी अनेक विशिष्ट प्रकार से सहाय एवं रक्षा करते हैं, यह बात निश्चित है।

☆ व्यक्ति स्वयं की शक्ति द्वारा - संतो, सत्शास्त्रों, साधना आदि की सहायता से स्वयं का आत्मिक उत्कर्ष साधने का प्रयत्न कर सकता है, परंतु स्वयं परमात्मा की या मुक्तपुरुष की कृपा तथा सहायता से जो उत्कर्ष प्राप्ति होती है, उसकी बात ही न्यारी है।

☆ प्रभु के साथ संबंध जोड़ने से उनकी सहायता तथा रक्षा प्राप्त होती है, यह उस प्रकार है, जैसे बालक को श्रेष्ठ तथा योग्य माता-पिता मिलने से सहाय और रक्षा मिलती है, अन्यथा प्रभु की सहायता के अभाव वाला व्यक्ति तो अनाथ बालक जैसा है, जो सहायता के लिये यहाँ-वहाँ भटकते रहता है।

☆ जो व्यक्ति समझदार होते हुए भी जगत संबंधित पंचविषय के भोगों में मोहवश होकर आसक्त होता है, उसे प्रभु की सहायता मिलनी संभव नहीं है।

☆ शुभ होते हुए भी सकाम कर्म करनेवाला अशुभ कर्मो से पूर्णतः बच नहीं सकता है। अशुभ कर्मो से पूर्णतः बचने का उपाय मात्र निष्काम भाव ही है।

☆ अडिग श्रद्धा, विश्वास और शुद्ध प्रेम बिना न तो किसी प्रकार का सफल आचरण होता है, न किसी प्रकार की प्रगति।

☆ मनुष्य स्वयं ही अनेक प्रकार की समस्याओं का जाल बुनता है एवं मोहवश हो कर उसमें फँसा रहता है।

☆ राग-द्वेषयुक्त स्थिति में बुद्धि अध्यात्मिक रहस्य की गहनता को स्पर्श नहीं कर सकती है। राग-द्वेष रहित शुद्ध बुद्धि ही सूक्ष्म होने के कारण आध्यात्मिक रहस्य को वास्तविक अर्थ में पाने को समर्थ है।

☆ सत्पुरुष की आज्ञाओं का यथार्थ पालन होने से उनकी कृपा होती है। उस कृपा से शुद्ध बुद्धि का उदय होता है, जिससे आध्यात्मज्ञान के रहस्य सरलता से समझ में आते हैं।

☆ समाज पर सबसे बड़ा परोपकार यही है कि प्रभु, सत्पुरुष तथा सत्शास्त्र द्वारा दर्शित उच्च आदर्श को प्रथम स्वयं के जीवन में चरितार्थ करें, तत्पश्चात उसी प्रकार से जीवन जीने की राह अन्य को दर्शित करें। अन्यथा समाज का पतन रूकना संभव नहीं है।

☆ विषयभोगों को मुख्य मानने से व्यक्ति के लिये पाप-पुण्य की परिभाषा का कोई मतलब नहीं रहता है अथवा वह मनस्वी तरीके से उनकी व्याख्या करने लगता है। स्वयं अनुचित राह पर चलकर, अन्य को भी अनुचित राह दर्शित करता है।

☆ सच्चे साधक निज ध्येय एवं आदर्शो में से कभी भी विचलित नहीं होते हैं। इनके लिए मृत्यु भी गौण हो जाती है और वह निर्भय हो जाता है।

☆ हितेच्छु तथा निर्भय व्यक्ति ही अन्य को उसके दोष दृष्टिकृत करवाता है। राग-द्वेष से भयभित तथा खुशामदी व्यक्ति अन्य को उसके दोष के प्रति जागरुक नहीं बना सकता है।

- ☆ प्रभुप्राप्ति के हेतु पुरुषार्थ करनेवाला साधक प्रभुप्राप्ति में बाधक संबंध या पदार्थ के प्रति द्वेष करे तो उसकी प्रगति अवरोधित होती है, अतः द्वेष न कर, विवेकपूर्वक उसका त्याग करने की राह ढूंढनी आवश्यक है।
- ☆ स्वयं के ईष्टदेव की उपासना और श्रद्धा श्रेष्ठ प्रतित होती हो, तथापि साधक को अन्य धर्मो के मत के प्रति द्वेष भाव न रखते हुए सहिष्णु होना चाहिए, अन्यथा साधना में विक्षेप होता है। अतः सर्वधर्म आदर की विशाल दृष्टि अपना कर, साथ - साथ में स्वयं के ईष्टदेव के प्रति श्रद्धा में एवं उपासना में भी स्थिर और दृढ़ होना चाहिए।
- ☆ जीव, ईश्वर और माया के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान सत्पुरुष के पास से ग्रहण करने के पश्चात का सोपान पुरुषार्थ ही है। तत्पश्चात ही प्रभु की कृपा उसपर बरसती है।
- ☆ सत्पुरुष के आदेशों की अवगणना कर प्रभुकृपा की प्राप्ति का प्रयत्न, आकाशकुसुमवत् निरर्थक तथा असंभव है।
- ☆ भगवान स्वामिनारायण के दिये गए पंचवर्तमान - मदिरा, माँस, चोरी, व्यभिचार, भ्रष्ट न होना तथा भ्रष्ट न करना, इनमें योगमार्ग के यम-नियम तथा सत्य, अहिंसा आदि सभी गुण समाविष्ट हैं। इन पंचवर्तमान में स्थित सूक्ष्म आध्यात्मिक अर्थो का रहस्य सत्पुरुषों के पास से समझ कर, उनका यथार्थ पालन कर अंतवृत्ति से प्रभु के स्वरूप में संलग्न होना ही सर्वश्रेष्ठ साधना है। अन्य साधना इसके समक्ष गौण है।

दोष

☆ काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि आंतरिक दोष तो जिसपर भगवान कृपा करें उसके ही टलते हैं, यह मानकर उसे टालने का विधेयात्मक पुरुषप्रयत्न न करे और ऐसी हिंमतरहित बात अन्य से भी करे, वह स्वयं को तथा अन्य को भी अन्याय करता है। भगवान स्वामिनारायण ने ऐसी हिंमत रहित बात करने वाले को सत्संग में कुसंग समान कहा है।

☆ आंतरिक दोष तो स्वाभाविकरुप से सभी में होते ही हैं। ऐसा मानकर उनके साथ (दोषों के साथ) समझौता - समाधान कर ले तो उन दोषों को कभी भी जीत नहीं सकते हैं।

☆ दोष होते हुए भी लोकैषणा की खातिर स्वयं को निर्दोष एवं सर्वगुण संपन्न होने का दंभ-दिखावा करे, तो साधक अवश्य ही पतन को आमंत्रित करता है।

☆ सभी में दोष ही भरे हैं, ऐसी संकुचित दृष्टिवाला व्यक्ति अन्य के दोषों को त्यागकर, मात्र गुणों को कभी भी ग्रहण नहीं कर सकता है।

☆ देहाभिमानी व्यक्ति को सभी के बीच में उसके दोष दृष्टिकृत करवाये तो स्वयं को अपमानित मानकर दोष दृष्टिकृत करवानेवाले के प्रति द्वेष करेगा। जब की सच्चा साधक ऐसी परिस्थिति में स्वयं को सुधारने का प्रयत्न करेगा।

☆ सज्जन व्यक्ति की तरह प्रभु भी दिव्यरूप से सहायता कर सकते हैं। ऐसा विश्वास व्यक्ति में न होने के कारण उसकी प्रगति मंद हो जाती है।

★ जिसे स्वयं की त्रूटियाँ तथा दोषों के प्रति चिढ़-कुभाव या खिन्नता उत्पन्न नहीं होती। वह कभी भी सुधर नहीं सकता है।

★ सत्पुरुषों द्वारा दर्शित प्रभुप्राप्ति के मार्ग के अलावा, मैं भौतिक विज्ञान की मदद से नया, संक्षिप्त, अनोखा मार्ग खोजकर त्वरित सफल हो जाऊँगा। यह सोचकर सत्पुरुष द्वारा दर्शित मार्ग की अवगणना कर, मनस्वी साधना करने वाला अधिक विघ्न तथा विक्षेपों में फँसता है और आखिरकार ऐसी साधना में निष्फल होता है। क्योंकि सत्पुरुष द्वारा दर्शित मार्ग अनुभव सिद्ध और सत्य होता है एवं साधक का स्वयं का मार्ग कल्पित तथा मिथ्या होता है।

★ जो व्यक्ति स्वबचाव के हेतु निज दोषों का समर्थन करने लगता है, वह पक्षपाती, ज़ीद्दी एवं दुराग्रही बन जाता है। अपूर्ण स्थिति में, अल्प योग्यता में, मान-सन्मान की अल्प इच्छा भी यदि विद्यमान हो, तो जब अधिक योग्यता प्राप्त हो, तो यह इच्छा भी तीव्रता धारण कर लेती है, जो साधक को प्रगति में बाधक होती है।

★ वाच्यार्थ ज्ञान को अनुभव का विषय बनाकर लक्ष्यार्थ न वनाये तब तक साधक की उस दिशा में कोई प्रगति संभव नहीं है।

★ मुख्य विषय एवं गौण विषय को जो वास्तविक रुप से नहीं पहचानता, उसके समय तथा शक्ति दोनों का व्यर्थ व्यय होने के कारण निष्फल होता है।

★ अति विश्वास (over confidence) तथा अति आशा में मिथ्याभिमानी न हो जाए। इसका ध्यान रखना चाहिए।

मिथ्याभिमान रुप दोष से बचने के लिये सर्वस्व प्रभु को अर्पित करना चाहिये। सर्व गुण तथा सामर्थ्य प्रभु के ही हैं मेरा कुछ भी नहीं है, He is everything and I am nothing ऐसा दासभाव दृढ़ करें।

☆ पुरुषार्थ और परिश्रम से कायर होनेवाला व्यक्ति सत्पुरुष द्वारा दर्शित मार्ग पर चल नहीं सक्ता है। जहाँ है वहीं रह जाता है।

☆ कई बार कठोर वाणी एवं उद्धत वर्तन करते हुए भी व्यक्ति, उस विषय के प्रति जागरुक नहीं होता है, यह बड़ा दोष है। यह दोष उसके लिये अनेक समस्याएँ लाता है।

☆ आंतरिक दोषों को परमात्मा के दिव्य स्वरुप का साक्षात्कार किये बिना, पूर्णतः कभी भी नष्ट नहीं किया जा सकता।

☆ परमात्मा संबंधित आध्यात्म की बातें, हमारे इस लोक में किसी स्वार्थ पूर्ति के हेतु सीमित रहें और प्रयोजन पूर्ण होने के साथ ही गौण हो जाए, तो साधक के लिये यह बड़ा दोष है, उसे प्रयत्नपूर्वक दूर करना ही चाहिए।

☆ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान आदि आंतरिक दोषों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात भी, जब तक आत्मा में प्रभु के स्वरुप का साक्षात्कार नहीं होता है, तब तक उसमें असावधान रहकर, यह मानने लगे कि मैं तो पूर्णतः निर्लेप हूँ, मुझे कुछ भी विक्षेप नहीं कर सकता है। ऐसी मान्यता भ्रम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यह एक बड़ा दोष है इसे दूर करना ही चाहिए।

कुसंस्कार

☆ पूर्वकर्म के संस्कार के कारण या संयोग के कारण दोष में लिप्त होकर जो कुसंस्कार रचित होते हैं वे अल्प एवं कमजोर होते हैं, परंतु जागृत रहकर, जानबूझ कर भोग में सुख तथा आनंद मानकर जो भोग भोगते हैं। उससे जो कुसंस्कार बनते हैं वे अति दृढ़ होते हैं। उनको दूर करने के लिये अधिक परिश्रम तथा दीर्घकाल लगता है।

☆ किसी भी उत्पन्न होने वाली वस्तु का नाश निश्चित है। जिस वस्तु को बनाया जा सकता है, उसका नाश भी किया जा सकता है। इस सिद्धांतानुसार हम रचित कुसंस्कार को हमारे प्रयत्न द्वारा रोक भी सकते हैं, दुर्बल कर सकते हैं और नष्ट भी कर सकते हैं।

☆ जिस प्रकार व्यक्ति खुद पर आने वाली सांसारिक - व्यावहारिक मुसीबत, दुःख, विघ्न आदि को अनेक प्रकार के उपाय से, स्वयं कष्ट सहकर भी दूर करता है। उसी प्रकार साधक को भी कुसंस्कार की समक्ष संघर्ष कर, प्रयत्नपूर्वक उसे दूर करना पडता है।

☆ बाह्य दोषों के अलावा आंतरिकदोष तथा कुसंस्कार की मात्रा कई गुना अधिक होती है। अनंत जन्मों के सूक्ष्म संस्कारों को समाधि के बिना जाना भी नहीं जा सकता है, तो दूर करना तो दूर की बात है। प्रभु के स्वरुप में चित्तवृत्ति की एकाग्रता दीर्घकाल पर्यंत रहने पर ही समाधि होती है, ऐसी समाधि के समय अनंत जन्मों के संस्कारों का भान होता है। उन संस्कारों

को दूर करने के लिये भी प्रभु की उपासना तथा ध्यान का ही सहारा लेना पडता है। अन्य उपाय सत्पुरुष की कृपा बरसना है। सेवा द्वारा सत्पुरुष प्रसन्न होते हैं और कृपा बरसाते हैं, फलस्वरुप अनेक जन्मों के कुसंस्कार नष्ट होकर साधक के चैतन्य को शुद्ध बनाते हैं।

☆ अंतदृष्टि, तपस्या, संयम तथा प्रभु के स्वरुप का एवं मुक्तपुरुष के वचन का बल हो तो, साधक कुसंस्कारों के उफान के सामने भी लड़कर उसे परास्त कर सकता है। जब की उससे रहित व्यक्ति कुसंस्कारों के उफान के साथ भोगों की ओर आकर्षित हो जाता है।

☆ प्रभु के स्वरूप के साथ अखंड सातत्य रखकर संलग्न रहने से अनंत जन्मों के कुसंस्कार क्षीण होते होते, अंततः नष्ट हो जाते हैं।

☆ यथार्थ ज्ञान और प्रभु के बनाये नियम-धर्म तथा सत्पुरुष के संग और वचन का बल, कुसंस्कारों को हटाता है, अन्यथा पापकर्म से बचना अत्यंत दुष्कर है।

☆ जो साधक यह सोचता है कि अनंत जन्मों के कुसंस्कार कैसे दूर होंगे? यह कार्य तो अति दुष्कर है। यह तो धीरे - धीरे कालानुसार जायेगा तब जायेगा। ऐसा नकारात्मक अभिगम रखने वाले साधक प्रयत्न में शिथिल बन जाते हैं। अंततः निराश एवं नाउम्मीद होकर मन की लडाई में निष्फल हो जाते हैं।

आत्मनिरीक्षण

☆ अतिशय मंदबुद्धि वाले तथा पशुतुल्य प्रकृति के मनुष्य को छोड़कर अन्य सभी मनुष्य, अगर सत्पुरुष एवं सत्शास्त्र द्वारा दर्शित उपदेशों को समझने का प्रयत्न करे तो वे आत्मनिरीक्षण द्वारा सत्-असत् सब कुछ जानकर स्वयं का उत्कर्ष कर सकते हैं।

☆ सांसारिक विषयभोग सुखाभासी होते हुए भी दुःखरूप तथा नाशवंत ही है। केवल परमात्मा का स्वरूप ही शाश्वत सुख तथा अविचल शांति का कारण है। ऐसा ज्ञान साधक को आत्मनिरीक्षण द्वारा होता है।

☆ आत्मनिरीक्षण द्वारा साधक स्वयं का ध्येय निश्चित कर, उसके प्रति संपूर्ण जागरुक रहकर, आलस्य-प्रमाद में आकृष्ट न होकर सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य, प्रभुप्राप्ति को सिद्धकर सकता है।

☆ निष्फलता, क्लेश, पतन, जो भी होते हैं, उनके मूल में केवल स्वयं का अज्ञान एवं अविद्या ही विद्यमान है तथा जितनी भी सुख, शांति, सफलता, प्रगति होती है, उनके मूलमें ज्ञान विद्यमान है। आत्मनिरीक्षण द्वारा व्यक्ति स्वयं किस स्थिति में है, यह जान सकता है तथा अज्ञान - अविद्या को दूर कर उच्चतर स्थिति में प्रवेश कर सकता है।

☆ साधक को आत्मनिरीक्षण द्वारा जानना चाहिये कि वह दोषों और क्षतियों के साथ समझौता-समाधान (Compromise) तो नहीं कर रहा है? दोषों के प्रति सचेत रहकर, ज़रुरत हो तो

कठिन अभिगम अपनाकर भी उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। सच्चा साधक स्वयं में दोष या अविद्या को बिलकुल भी सह नहीं सकता है।

☆ साधक को आत्मनिरीक्षण द्वारा दृष्टिकृत करते रहना चाहिए कि वह ध्यान-भजन, स्वाध्याय आदि प्रभुप्रसन्नता के उपाय प्रसिद्धि की लालच या किसी आडंबर या लोगों के दिखावे के लिये तो नहीं करता है? ऐसी जागृति की साधक में कमी होगी तो वह दंभ का संवर्धन करेगा और उन्नति के स्थान पर अवनति की और अग्रसर होगा।

☆ कुछ अंश तक आध्यात्मिक अनुभूति होते हुए भी साधक को आत्मनिरीक्षण द्वारा अविरत यह जागृति रखनी आवश्यक है कि पूर्ण हो जाने के मिथ्या भ्रम या मान्यता में तो नहीं है न?

☆ आत्मनिरीक्षण द्वारा साधक को यह परीक्षण करते रहना चाहिए कि प्रभु के कल्याणकारी गुणों को जीवन में कितने आत्मसात किये हैं और कितने दोष निष्कासित करने बाकी हैं। यह परीक्षण करते हुए, गुणों को आत्मसात कर, दोषों को दूर करने का अविरत निष्ठापूर्वक प्रयत्न करना चाहिए।

योग्य - अयोग्य व्यवहार

☆ व्यक्ति को विवेक दृष्टि रखकर जो वस्तु जितनी लाभदायी हो उसे उतना ही महत्व देना चाहिए। परमात्मा का स्वरूप तो सर्व से अधिक लाभप्रद है। अतः जीवन में उसे सर्वोच्च महत्त्व देना चाहिए तथा उसकी प्राप्ति के हेतु विशेष पुरुषार्थ करना चाहिए, यही यथायोग्य व्यवहार कहा जाए।

☆ परमात्मा के साथ समुचित संबंध बाँधने के हेतु, उनके द्वारा हमारे लिए निर्मित कर्यव्य को निष्ठापूर्वक करना तथा अन्य अकर्तव्य को विवेकपूर्वक त्यागना आवश्यक है।

☆ जो व्यक्ति नीति तथा न्याय बुद्धि छोड देता है वह मनुष्यत्व से भी दूर हो जाता है। परमात्मा तथा मुक्तपुरुष अन्य किसी से भी अधिक, हमारे सर्वोच्च हितेच्छु हैं। उनके वचन का अनादर करना या उनके द्वारा निर्मित नियम भंग करना अन्याय बुद्धि, अधर्मपूर्ण एवं अयोग्य व्यवहार है।

☆ परमात्मा तथा सत्पुरुष के साथ का उचित व्यवहार मनुष्य क़े लिये परम ध्येय परिपूर्ण करने का अमोघ एवं निश्चित उपाय है। योग्य व्यवहार से सफलता और अयोग्य व्यवहार से निष्फलता निश्चितरुप से मिलती है। परमात्मा के साथ का संबंध स्वामी-सेवक का, उपास्य-उपासक का या पिता-पुत्र का रखना, साधक के लिये अति उपयोगी एवं आवश्यक भी है।

☆ उपर्युक्त कथनानुसार संबंध परमात्मा के साथ कैसा और कितना रहता है। यह आत्मनिरीक्षण के द्वारा साधक जान

सकता है। अगर साधक को ऐसा संबंध रखने में त्रूटि रहे, तो उसका प्रभु के साथ व्यवहार अयोग्य है।

- ✯ प्रभु की उपासना, ध्यान, भक्ति आदि करते - करते किसी उच्च गुण की प्राप्ति हो औरउसका मान-सन्मान हो, तब वह सत्पुरुष को गौण मानकर स्वयं को मुख्य माने, तो प्रभु के प्रति अयोग्य व्यवहार कहा जाए और उसे प्रभुप्राप्ति अलभ्य होती है।
- ✯ परमात्मा तथा सत्पुरुष का कोई अज्ञानी द्वेषी व्यक्ति अपमान करे, निंदा करे, अनुचित बोले या अवगुण ले उसे विवश हो कर निर्माल्यता पूर्वक सुनता रहे और उसका विरोध न करे, तो वह भी प्रभु एवं सत्पुरुष के साथ अयोग्य व्यवहार माना जाए। ऐसे निर्बल तथा डरपोक साधक के लिए प्रभुप्राप्ति का मार्ग दुष्कर है।
- ✯ प्रभु तथा सत्पुरुष की जिसमें प्रसन्नता एवं रूचि न हो ऐसा कृत्य शायद व्यावहारिक या दुनिया की दृष्टि से उचित हो, तथापि ऐसा कृत्य करना अयोग्य व्यवहार है। अतः जिसमें प्रभु तथा मुक्तपुरुष की प्रसन्नता हो वही कृत्य करना चाहिए।
- ✯ प्रभु के स्वरुप में आंतरिक वृत्ति से जुड़ने का प्रयास करने वाले साधक का दुनिया के संबंधो के प्रति व्यवहार भी योग्य ही होगा। क्योंकि प्रभु कृपा से ऐसे साधक की वाणी तथा वर्तन में सच्चाई, सरलता एवं माधुर्य प्रकट होता है।

सुख-दुःख

☆ अनंत जन्मों से जीव सुखप्राप्ति के हेतु भटकता है और मनुष्य जन्म में भी बचपन से सुख के लिये बेकार प्रयत्न करता है, परंतु वास्तविक सुख, शाश्वत सुख किस में है और वह किस प्रकार से प्राप्त होता है यह अधिकांश वर्ग को ज्ञात नहीं होता है। अतः दुखों का अंत नहीं होता है।

☆ सभी सुख एवं सुखप्राप्ति के साधन-सुविधा के इच्छुक हैं, परंतु प्रेय तथा श्रेय के भेद को नहीं समझने के कारण कई भौतिकवादी बन जाते हैं। उस भेद को यथार्थ समझकर श्रेय का मार्ग ग्रहण करनेवाला अध्यात्मवादी बनता है।

☆ संसार संबंधित लौकिक सुखों को भी वही व्यक्ति भलीभाँति भोग सकता है जो संयमपूर्वक तथा शास्त्रों की मर्यादा में रहकर भोगता है। उदाहरण स्वरूप जो स्वाद के कारण अधिक खाता है, वह रोगी बनता है और जो संयमपूर्वक मिताहार करता है, वह निरोगी एवं पुष्ट होता है।

☆ जो साधक परब्रह्म की प्राप्ति का इच्छुक है, मुक्त होना चाहता है, वह पंचविषय के सुख को आसक्तिपूर्वक भोगते रहता है, तो कभी भी मुक्त नहीं हो सकता है।

☆ पंचविषय के भोगों में भी सुख है ऐसी मान्यता रखने वाला व्यक्ति कभी भी उन भोगों की लालसा में से छूट नहीं सकता है।

☆ एक इन्द्रिय के सुख को लेने की रुचि रखने वाला, अन्य इन्द्रियों के सुख लेने से बच नहीं सकता है। एक इन्द्रिय

निर्बाध छोडे तो सभी इन्द्रियाँ निर्बाध हो जाती है और अपने-अपने विषयों के प्रति आकर्षित हो जाती है।

★ एक इन्द्रिय को सुख लेने में आसक्त करने से अन्य इन्द्रियों में भी उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है। जिस प्रकार नेत्र से रूप देखने से स्पर्शेन्द्रिय भी उत्तेजित होगी। नेत्र से मिष्ट भोजन दृष्टिकृत किया तो, रसना इन्द्रिय में स्वाद उत्तेजित होगा। उसकी सुगंध से घ्राणेन्द्रिय उत्तेजित होगी, उसे लेने के लिये हाथ भी कार्यरत होंगे। मधुर आवाज सुनने से उसका रुप देखने की ईच्छा जागृत होगी। अतः एक इन्द्रिय पर संपूर्ण नियंत्रण रखने से धीरे - धीरे अन्य इन्द्रियाँ भी नियंत्रण में आ जाती है। उदाहरण स्वरूप रसना इन्द्रिय जीतने से क्रमशः अन्य इन्द्रियाँ जीती जा सकती है।

★ पंचविषय संबंधित भोगों में प्रथम सुख का भास होता है। उसके उपभोग के पश्चात, अंततः इसमें दुख ही है, यह प्रतीत होता है। जब कि परमात्मा संबंधित सुखप्राप्ति के मार्ग में प्रथम दुःख एवं कष्ट प्रतीत होते हैं, परंतु अंततः शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है। पंचविषय का सुख मृगतृष्णा तुल्य आभासी एवं नाशवंत है। जब कि परमात्मा संबंधित सुख अनुभवजन्य, अलौकिक तथा अविचल है।

★ "इन्द्रियों के भोगों की वृत्ति को नियंत्रण में लाया जा सकता है।" यह बात संभव है। इसकी स्वीकृति तो कई व्यक्ति करते हैं, परंतु 'इस इन्द्रिय की वृत्ति को मैं तुरंत जीत लुंगा' ऐसी सकारात्मक दृढ़ भावना तथा उसके अनुरूप प्रयत्न कोई नायाब व्यक्ति ही करता है।

★ सत्पुरुष एवं सत्शास्त्र के कथनानुसार विषयभोग में मृगतृष्णा

तुल्य सुख का आभास मात्र ही है। यह सुख नहीं, दुःख ही है, तथापि उसमें लौकिक मनुष्य को सुख प्रतीत होता है। सत्पुरुष के कथन में तथा लौकिक मनुष्य के कथन में विरोधाभास है, तो क्या करें? साधक को सत्पुरुष तथा सत्शास्त्र के वचन में निःशंकरुप से विश्वास तथा श्रद्धा रखकर उनकी बात को ही स्वीकार कर जीवन में उतारना पड़ेगा, अन्यथा वह साधना में सफल नहीं हो सकता है।

☆ दुःखों से व्याकुल हुआ व्यक्ति एकाग्रता के अभाव में प्रभुप्राप्ति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता है। अतः सुख - दुःख में स्थितप्रज्ञ होना अनिवार्य है।

☆ पुरुषार्थ और परिश्रम से कष्ट होता है यह विचार क्षतिपूर्ण है। क्योंकि परिश्रम और पुरुषार्थ सुखप्राप्ति के प्रथम सोपान है। प्रभु की कृपा प्रसन्नता भी पुरुषार्थी पर ही होती है।

☆ मन एवं इन्द्रिय को जीतने के लिये की गई तपस्या को प्रभुप्राप्ति के साधन के रुप में स्वीकारी जाए तो वह कष्टदायी न लगते हुए आनंदप्रद लगती है। परंतु उसे प्रभु प्रसन्नता का साधन न माने तो कष्टप्रद हो जाती है।

☆ भूतकाल के दुःखों का मनन करने से शांति का अनुभव कदापि नहीं होता है, वरन नए दुःखों के जन्म होने का कारण बनता है। अतः भूतकाल भूलकर प्रभु की स्मृति सह आनंदपूर्वक वर्तमान में जीना, सुख-शांति प्राप्त करने का अचूक उपाय है।

☆ "सूरपूर, नरपूर, नागपुर ये तीन में सुख नाहीं कां सुख हरि के चरण में, का संतन के मांही" उक्त पंक्ति के अनुसार सच्चा सुख प्रभु में तथा सत्पुरुष में ही है। परंतु प्रत्यक्ष योग न

हुआ हो तब क्या करें? ऐसा योग न हुआ हो तब आंतरिक वृत्ति से प्रभु के स्वरूप का तथा मुक्तपुरुष का उनकी दिव्य स्मृति द्वारा अखंड योग करते रहना ही सुखप्राप्ति का अमूल्य उपाय है।

सत्य-असत्य

☆ मन से मानी हुई मनस्वी बात को ही ग्रहण करना मानवधर्म नहीं है। सत्पुरुष तथा सत्शास्त्र के प्रमाण रूप वचन मानकर जीवन में उतारना ही वास्तविक अर्थ में मानवधर्म है। यही सत्य तथा असत्य के विवेक का अर्थ है।

☆ मन की चंचलता रुककर, स्थिरता आने पर ही सत्य-असत्य, कर्तव्य-अकर्तव्य, न्याय-अन्याय, नीति-अनीति, सार-असार आदि का सही-सही ज्ञान होता है।

☆ साधक स्वयं के मन में एक भावना अटलतापूर्वक दृढ़ कर रखें कि, 'मैं सत्य को ही ग्रहण करूँगा असत्य की राह कभी भी ग्रहण नहीं करूँगा।" ऐसी भावना की दृढ़ता से व्यक्ति कभी भी सत्य से विचलित नहीं होता है। जो व्यक्ति सत्य की इच्छा न कर, स्वार्थमय भौतिक सुख एवं सत्ता की इच्छा रखता है, खुद को जो अच्छा लगे वह अधर्मपूर्ण, अन्याययुक्त, असत्यपूर्ण हो तथापि उसे ग्रहण करता है, उसकी साधना निष्फल होती है।

☆ जिस व्यक्ति को किसी भी प्रकार का भय सताये, वह व्यक्ति संपूर्णतः सत्यनिष्ठ नहीं बन सकता है।

☆ मृत्यु के भय से प्रायः व्यक्ति सत्य को छोड़कर असत्य ग्रहण कर, स्वयं का निरर्थक बचाव करने का प्रयत्न करता है। परंतु ऐसे प्राणांत के भय के समय भी निर्भय होकर केवल सत्य का ही ग्रहण करता है वह विरल व्यक्ति है एवं प्रभुकृपा का पात्र है।

- ✯ मान-अपमान, लाभ-हानि, प्रिय-अप्रिय, अनुकुल-प्रतिकुल, सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि द्वंद्वों से प्रभावित होनेवाला व्यक्ति मात्र सत्य को ही लगे रहने में समर्थ नहीं हो सकता।
- ✯ सत्यनिष्ठ व्यक्ति मृत्यु को हँसते हुए स्वीकार करेगा, परंतु प्रभु की उपासना, निष्ठा तथा आज्ञा से कदापि विचलित नहीं होगा।
- ✯ सत्यनिष्ठ साधक अन्य को ज्ञानोपदेश करता रहे और निज जीवन में उस उपदेश को चरितार्थ न करे ऐसी स्थिति वह हरगीज नहीं सह सकता है। वह अपने आचरण में उतारने का अविरत प्रयत्न करता ही रहेगा। दंभ-दिखावे को जीवन में कभी भी स्थान नहीं देगा।
- ✯ जागृत व्यक्ति ही सत्य का पालन कर सकता है। अन्यथा मोहवश व्यक्ति अज्ञानपूर्वक अधिकाधिक असत्य का आचरण करता है।
- ✯ ज्ञानपूर्वक असत्य का आचरण करने के पश्चात जो व्यक्ति स्वयं के दोष का स्वीकार नहीं करता तथा उस दोष को छिपाने का मिथ्या प्रयास करता है, उस दोष को दूर करने में विलंब करता है तो उसमें कुसंस्कारों की दृढ़ता अधिकाधिक होती है, जो उसको अधिक बंधन में जकड़ती है।
- ✯ व्यक्ति में सत्य अपने आप टिका नहीं रहता है। उसे प्रयत्नपूर्वक टिकाना पड़ता है। प्रभु में, सत्पुरुष में अचल श्रद्धा सत्य को टिकाने का प्रेरक बल प्रदान करती है।
- ✯ परमात्मा द्वारा निर्मित व्यवस्था में केवल सत्य की जीत होती है - 'सत्यमेव जयते', जब कि मानव निर्मित व्यवस्थामें असत्य एवं अन्याय समाविष्ट है। उसमें कभी उसकी जीत

होती हो ऐसा प्रतीत होता है, परंतु अंतिम हार-जीत का फैसला प्रभु के दरबार में होता है। यहाँ जीत का विशद् अर्थ आत्यंतिक मोक्ष की प्राप्ति है और हार का अर्थ, सांसारिक और जन्म-मृत्यु रूप संसृति का बंधन है।

☆ सुनी हुई या देखी हुई कोई घटना किसी व्यक्ति के लिये कुछ अधिक या कुछ कम कहना, वास्तविकता से अतिशयोक्ति करना या अल्पोक्ति करना अथवा व्यंगात्मक रुप से कहना या अस्पष्ट रुप से कहना ये सभी असत्य के अलग-अलग प्रकार हैं। वाणी में राग - द्वेष, अहंकार या असत्य मिश्रित होता है तो वह व्यक्ति की वाणी को निर्बल एवं निर्वीर्य बनाता है। अतः साधक के लिये यह अत्यावश्यक है कि वह असत्य का आश्रित न होकर सत्य को ही ग्रहण करें।

☆ किसी प्रतिज्ञा, नियम या व्रतपालन के लिये संकल्प उद्भवित हो अथवा किसी को किसी प्रकार का वचन दिया हो, उसका आलस्य - प्रमाद के कारण आचरण द्वारा पालन न करे, तो वह दैहिक असत्य है। ऐसा दैहिक असत्य आचरण शारीरिक शक्ति को क्षय करता है, मन तथा शरीर की संवादिता में कमी उत्पन्न करता है, जिससे मनोबल भी तूटता है। अतः जिसे सत्याचरण करना हो उनको स्वयं के ईष्टदेव के पास या सत्पुरुष के पास सत्याचरण का दृढ़ संकल्प करना चाहिए तथा उसके अनुसार इसके पालन में अड़िगता पूर्वक, निष्ठा से लगे रहना चाहिए। ईष्टदेव या सत्पुरुष के पास किया गया दृढ़ संकल्प सत्य के पालन में सबल सहारा बनता है एवं साथ-साथ कवच भी प्रदान करता है।

☆ अन्याय, अधर्म, अनीति और असत्य का आवश्यकतानुसार

संघर्ष कर प्रतिकार करना या अस्वीकार करना भी सत्य के आचरण का महत्वपूर्ण अंग है। अन्याय, अधर्म, अनीति और असत्य का आचरण जिस प्रकार अपराध है, उसी प्रकार असत्य और अन्याय के सामने झूकना या उसके आधीन हो जाना भी कायरतापूर्ण अपराध है। असत्य और अन्याय के समक्ष शूरवीर होकर प्रतिकार करना भी सत्य का ही आचरण है।

☆ शब्दों का प्रमाण भौतिक वैज्ञानिक तथा प्रबुद्ध - प्रज्ञावान सत्पुरुष दोनों का स्वीकार्य माना जाता है, परंतु सत्य की मात्रा पूर्ण रूप से सत्पुरुष के शब्दों में होती है, जब कि भौतिक वैज्ञानिक स्वयं के किसी स्वार्थ की पूर्ति खातिर या पक्षपात रूप असत्य का आधार भी ले सकता है।

☆ सत्य ईश्वर का ही रूप है, परंतु जो व्यक्ति ईश्वर के पाने के प्रयत्न में प्रमादी है, परंतु सत्य में निष्ठा रखता है तथा सत्यपरायण जीवन जीता है। वह अंततः निश्चित रूपसे ईश्वर को प्राप्त करता है।

☆ प्रभु या सत्पुरुष जिसे प्रमाणित करते हैं यही सत्य है। जिसे प्रमाणित नहीं करते वही असत्य है, क्योंकि हमें जो सत्य लगता है वह वास्तव में असत्य भी हो सकता है, जो असत्य लगता हो वह वास्तव में सत्य हो सकता है। अतः सत्य-असत्य का अंतिम निर्णय परमात्मा के हस्तक है। जिस का कारण परमात्मा ही सर्वज्ञाता एवं स्वयं पूर्ण सत्य है।

मनोनिग्रह

- ☆ मन का निग्रह, उस पर नियंत्रण धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति यह साधन चतुष्टय तथा सत्य, अहिंसा, संयम, निर्मलता, निर्भयता आदि प्रभु के कल्याणकारी गुणों की सिद्धि के लिये अतिआवश्यक है।
- ☆ मन का निग्रह होते ही विषयों की ओर अग्रसर होती इन्द्रियों की वृत्ति निजविषय में से पुनरावर्तित हो कर, प्रत्याहार पाकर आत्मा - परमात्मा के स्वरूप में स्थिर हो सकती है।
- ☆ एकांत में मनोनिग्रह करने की पूर्व भूमिका रूप वृत्तियों की एकाग्रता, सरलता से सिद्ध हो सकती है। क्योंकि अन्य पदार्थो के आलंबन का अभाव होता है। तथापि अविरत जागृति एकांत में भी आवश्यक है, अन्यथा एकांत में भी दोष उद्‌भवित होते हैं।
- ☆ जिसे सांसारिक भोगों में तथा संबंधो में अधिक आसक्ति है। उसे मनोनिग्रह करने में अत्यंत संघर्ष करना पड़ता है। फलस्वरूप उसे थकान अधिक लगती है, तनाव भी महसूस होता है, परिणाम स्वरूप अधिकांश तौर पर साधना को मझधार में ही छोड़ देता है, परंतु हिंमत हारे बिना प्रयत्न चालु रखे, तो प्रभु तथा सत्पुरुष की प्रसन्नता होने से मन का नियंत्रण - निग्रह निश्चित रूप से कर सकता है।
- ☆ मनोनिग्रह के बिना आत्मशुद्धि, एकाग्रता, स्वतंत्रता, निर्भयता, निश्चिंतता, चित्त की प्रसन्नता, आनंद, शांति आदि संभव नहीं है।

☆ मन को चैतन्य न मान कर जड़ मानने से तथा निजस्वरूप को चैतन्य - आत्मा रूप मानने से, मन आदि जड़ पदार्थो से अत्यंत विलक्षण मानने से, मन की वृत्तियाँ नियंत्रण में आ जाती है। इसके लिये आंतरिक दृष्टि का अस्खलित अभ्यास अति आवश्यक है।

☆ आध्यात्मिक साधना में त्वरित गति से विकास करना हो, तो साधक को साधना की शुरूआत से ही मन, बुद्धि, चित्त इत्यादि अंतःकरण तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण करने की युक्ति सत्पुरुष के पास से सीखकर शुरूआत करनी चाहिए।

☆ 'जीतं जगत केनः मनोही येनः' जिसने मन का निग्रह कर मन को परिपूर्ण रूपसे जीत लिया है। उसके लिये समस्त जगत जीता हुआ है। समग्र विश्व तथा प्रकृति उसके नियंत्रण में आ जाती है।

उपासना

☆ उप अर्थात् समीप एवं आसन अर्थात् बैठना परमात्मा के अखंड सांनिध्य में रहना। उस का सर्वोच्च अर्थ यह है कि परमात्मा के स्वरूप के साथ संपूर्ण ऐक्य कर, तद्रूप हो कर, उस दिव्य स्वरूप संबंधित अनिर्वाच्य परमानंद की, शाश्वत सुख की अखंड अपरोक्षानुभूति (साक्षात्कार अनुभूति) करना।

☆ मन परमात्मा के ध्यान तथा ज्ञान में सुस्थिर न हो, तब तक उपासना परिपक्व नहीं हो सकती है। ध्यान के समय मन की वृत्तियाँ विषयों में यहाँ - वहाँ भटकती है। तब साधक को समझना चाहिए कि अभी उपासना में कमी है, क्योंकि प्रभु के सिवा अन्य कहीं वृत्ति लगने से उपासना वस्तुतः सिद्ध नहीं होती है।

☆ पंचविषय के विविध भोगों में आसक्ति है तब तक प्रभु में अनुराग और पराप्रेम निष्पन्न नहीं होता है। जब तक सभी जगह से सम्यक् वैराग्य प्राप्त कर मात्र प्रभु में ही अनुराग उत्पन्न नहीं होता तब तक शुद्ध उपासना ही कहाँ हुई है? जो है केवल भ्रांति ही है मात्र वाच्यार्थ है, लक्ष्यार्थ नहीं है।

☆ प्रभु प्राप्ति की साधना में आलस्य -प्रमाद आने से कर्तव्य परायणता, आज्ञा पालन, आदि में शिथिलता आये, मन विषय भोगों में आकर्षित रहे तब उपासक को समझना चाहिये कि उसकी उपासना कहने भर की है। उसमें दृढ़ता या परिपक्वता नहीं है। अतः अभी सघन प्रयत्न की आवश्यकता है।

☆ विपरित देशकाल में प्रभु के सर्वोपरि स्वरूप के सिवा अन्य देव-मंत्र-जंत्र-विद्या आदि में लेश मात्र प्रतीति आए, तो वह अन्याश्रय होने से प्रभु की सर्वोपरि शुद्ध उपासना सिद्ध नहीं हो सकती है। अतः सत्पुरुष के पास से शुद्ध उपासना समझ कर उसे सिद्ध करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

☆ चैतन्य के आत्यांतिक मोक्ष Ultimate Liberation के लिये, सर्व कारण के कारण, सर्व अवतारों के अवतारी, सर्वोपरि परब्रह्म परमात्मा, पूर्ण पुरुषोत्तमनारायण के स्वरूप की शुद्ध उपासना की नितांत आवश्यक्ता है। ऐसी उपासना परमात्मा के साक्षात्कारवाले अनुभवी सत्पुरुष के अनन्यभाव से किये गये सेवा -समागम द्वारा ही उपलव्ध होती है।

☆ परमात्मा के दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार करने के हेतु भगवान स्वामिनारायणने श्रीमुखवाणी 'वचनामृत' में प्रभु के स्वरूप की उपासना तथा स्वरूप का ध्यान, इन दो वातों को अत्यंत आवश्यक कहा है। इस पर से फलित होता है कि शुद्ध उपासना साधक के लिये कितना मायने रखती है।

श्री स्वामिनारायण डिवाइन मिशन क्यों ?

श्री स्वामिनारायण भगवान के सर्वजीवहितावह संदेश अनुसार मानव जाति के श्रेय एवं प्रेय के लिये-

(क) सेवा - सदाव्रत के आदर्शानुसार बिना भेदभाव के आर्थिक मुसीवत का अनुभव करते भाईबहनों को आवश्यक सहायता पहुँचाना;

(ख) आरोग्य प्रसार की मार्गदर्शक व्यवस्था तथा रोगोपचार के परिचर्या केन्द्र-औषधालय की स्थापना-चलाना, अथवा ऐसा कार्य करती संस्था को सहायता करना;

(ग) आत्मिक शांति तथा मानवता को प्रसारित करते मंदिर, सत्पुरूष के स्मारक केन्द्र आदि का निर्माण-निर्वाह-विकास करना;

(घ) जीवन रचना में उपयोगी साहित्य एवं कला के विकास कार्य को प्रोत्साहित करना;

(च) सम्यक् अभ्यास के लिये पुस्तकालय, संग्रहालय, संशोधन केन्द्र की स्थापना - चलाना अगर ऐसे ईकाई को सहायता देना;

(छ) सर्व समन्वय स्थापित हो ऐसे सांसारिक एवं तत्त्वज्ञानविषयक प्रकाशन प्रसिद्ध करना तथा उनके द्वारा जनसमुदाय का ऊर्ध्वगामी विकास में सहायक होना;

एवं इस प्रकार :

(१) सामाजिक जीवन के आधार तुल्य सदाचार तथा नीति की कक्षा बलवान हो ऐसी प्रवृत्ति का आयोजन करना;

(२) समाज में ऐक्य एकता तथा आपसी सहृद्भाव वृद्धित हो, विश्वबंधुत्व की भावना का विकास हो एवं विसंवादिता दूर हो ऐसे कार्यक्रम देना;

(३) विश्व के धर्म तथा पक्षो के बीच संवादिता का जतन हो इसके लिये सर्वधर्मीय परिषद का आयोजन करते हुए आध्यात्मिक एवं सामाजिक उत्कर्ष को गति देना;

ऐसे सुआयोजित कार्यक्रम तथा प्रवृत्ति द्वारा परिपूर्ण भगवत्स्वरूप की प्राप्ति की ओर मानव समुदाय सर्वांगी विकास का प्राप्ति कर गतिमान हो, ऐसा मिशन का शुभ आशय है।

दुःख, आपत्ति और शिक्षा
चैतन्य को मोक्ष मार्ग पर ले जाती है.

- पूज्यश्री नारायणभाई